Chapter इकतीस

भगवान् श्रीकृष्ण का अंतर्धान होना

इस अध्याय में सारे यदुओं समेत भगवान् का अपने धाम के लिए प्रत्यावर्तन का वर्णन हुआ है।

दारुक से यह जान कर कि श्रीकृष्ण अपने धाम प्रत्यावर्तित हो चुके हैं, वसुदेव तथा द्वारका में बचे लोग शोक से अतीव क्षुब्ध हो उठे और उन्हें पाने के लिए नगर के बाहर गये। वे सारे देवता, जो भगवान् की इच्छा का पालन करते हुए उनकी लीलाओं में सहायता पहुँचाने के लिए यदुकुल में जन्मे थे, भगवान् के पीछे पीछे अपने अपने धामों को लौट गये। भगवान् द्वारा अपने लिए जीवन की सृष्टि और फिर उसका विध्वंस किसी अभिनेता के प्रदर्शन के समान, माया का जादू मात्र है। वस्तुत: वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं और तब परमात्मा रूप में उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं। अन्त में, वे फिर सारे ब्रह्माण्ड को अपने भीतर समेट लेते हैं और अपने निजी यश में रहते हुए बाह्य लीलाओं से दूर स्थित रहते हैं।

यद्यपि अर्जुन कृष्ण के वियोग से अभिभूत थे, किन्तु तो भी भगवान् द्वारा दिये गये विविध आदेशों को स्मरण करके वे अपने को शान्त कर सके। तब अर्जुन ने अपने मृत सम्बन्धियों का पिण्डदान सम्पन्न किया। उस समय समुद्र ने भगवान् के निवास स्थान को छोड़ कर सारी द्वारका पुरी को जलमग्न कर लिया। जो यदुवंशी बचे थे उन्हें लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ गये जहाँ उन्होंने वज्र को सिंहासन पर बैठाया। इन घटनाओं को सुन कर युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने परीक्षित को राज-सिंहासन दे दिया और महाप्रयाण के लिए प्रस्थान किया।

श्रीशुक उवाच

अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भव: ।
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनय: सप्रजेश्वरा: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; तत्र—वहाँ; आगमत्—आया; ब्रह्मा—ब्रह्मा; भवान्या—उनकी प्रेयसी भवानी; च—तथा; समम्—सहित; भवः—शिवजी; महा-इन्द्र-प्रमुखाः—इन्द्र इत्यादि; देवाः—देवतागण; मुनयः—मुनिगण; स—सहित; प्रजा-ईश्वराः—ब्रह्माण्ड की प्रजा के जनक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तब शिव तथा उनकी प्रेयसी, मुनियों प्रजापतियों तथा इन्द्रादि देवताओं सहित, ब्रह्माजी प्रभास आये।

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥
द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ।
गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

पितरः—पूर्वज; सिद्ध-गन्धर्वाः—सिद्ध तथा गन्धर्वगण; विद्याधर-महा-उरगाः—विद्याधर तथा बड़े बड़े सर्प; चारणाः—चारणजन; यक्ष-रक्षांसि—यक्ष तथा राक्षसगण; किन्नर-अप्सरसः—किन्नर तथा अप्सराएँ; द्विजाः—बड़े बड़े पक्षी; द्रष्टु-कामाः—देखने के इच्छुक; भगवतः—भगवान् का; निर्याणम्—प्रस्थान; परम-उत्सुकाः—अत्यन्त उत्सुक; गायन्तः—गाते हुए; च—तथा; गृणन्तः—प्रशंसा करते हुए; च—तथा; शौरेः—शौरि (कृष्ण) के; कर्माणि—कार्यकलाप; जन्म—जन्म; च—तथा।

भगवान् का प्रस्थान देखने के लिए चारणों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरों, अप्सराओं तथा गरुड़ के सम्बन्धियों समेत पितरगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर तथा बड़े बड़े सर्प भी आये। आते समय वे सभी व्यक्ति भगवान् शौरि (कृष्ण) के जन्म तथा कार्यों का विविध प्रकार से गायन और महिमा-वर्णन कर रहे थे।

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ।
कुर्वन्तः सङ्कुलं राजन्भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ववृषुः—वर्षा की; पुष्प-वर्षाणि—फूलों की वर्षा; विमान—वायुयानों की; आवलिभिः—पंक्तियों द्वारा; नभः—आकाश; कुर्वन्तः—बनाते हुए; सङ्कुलम्—पूरित; राजन्—हे राजा परीक्षित; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; परमया—दिव्य; युताः—से युक्त।

हे राजा, उन्होंने आकाश में अपने अनेक विमानों की भीड़ लगाकर अत्यन्त भक्ति के साथ फूलों की वर्षा की।

भगवान्पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; पितामहम्—ब्रह्माजी को; वीक्ष्य—देख कर; विभूतीः—शक्तिमान अंशों, देवताओं को; आत्मनः—निजी; विभुः—शक्तिमान भगवान्; संयोज्य—स्थिर करके; आत्मनि—अपने में; च—तथा; आत्मानम्—अपनी चेतना; पद्म-नेत्रे—कमलनयनों में; न्यमील्यत्—बन्द कर लिया।.

अपने समक्ष ब्रह्माण्ड के पितामह ब्रह्माजी को अन्य देवताओं के साथ देख कर जो कि उनके निजी तथा शक्तिशाली अंश हैं, सर्वक्तिमान प्रभु ने अपने मन को अपने भीतर स्थिर किया और अपने कमलनेत्र बन्द कर लिये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, भगवान् कृष्ण पहले ही ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं की उस प्रार्थना को स्वीकार कर चुके थे जिसमें उन्होंने भगवान् से अपने सेवक देवताओं की रक्षा के लिए ब्रह्माण्ड के भीतर अवतरित होने की याचना की थी। अब ये देवता भगवान् के सामने आये और वे सभी उन्हें अपने अपने लोक ले जाना चाह रहे थे। इन असंख्य सामाजिक कार्यों से बचने के लिए भगवान् ने आँखें बन्द कर लीं मानो समाधि में लीन हों।

श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि भगवान् कृष्ण ने अपनी आँखें योगियों को यह सिखलाने के लिए बन्द कर लीं कि इस मर्त्य लोक को किस तरह अपने रहस्यवादी ऐश्वर्य से किसी आसक्ति के बिना, त्याग देना चाहिए। ब्रह्मा समेत सारे देवता भगवान् कृष्ण के योगिक अंश हैं; फिर भी भगवान् ने इस बात पर बल देने के लिए, अपनी आँखें बन्द कर लीं कि इस जगत से प्रयाण करते समय मनुष्य को अपना मन भगवान् में स्थिर कर लेना चाहिए।

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ।
योगधारणयाग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

लोक—सारे लोकों के प्रति; अभिरामाम्—अत्यन्त आकर्षक; स्व-तनुम्—अपने दिव्य शरीर को; धारणा—समाधि; ध्यान—तथा ध्यान का; मङ्गलम्—शुभ वस्तु; योग-धारणया—योग की समाधि से; आग्नेय्या—अग्नि पर केन्द्रित; अदग्ध्वा—बिना जलाये; धाम—धाम; आविशत्—प्रवेश किया; स्वकम्—अपने।.

अपने दिव्य शरीर को जलाने के लिए योगिक आग्नेयी ध्यान का उपयोग किये बिना, भगवान् कृष्ण अपने धाम में प्रविष्ट हो गये। उनका दिव्य शरीर सारे जगतों का सर्व-आकर्षक आश्रय है और समस्त धारणा तथा ध्यान का लक्ष्य है।

तात्पर्य : जिस योगी को अपना शरीर त्यागने के लिए समय निर्धारित करने की शक्ति मिली रहती है, वह *आग्नेयी* नामक योगिक ध्यान में लग कर ज्वाला उत्पन्न करके इसे जला सकता है और अगले

जीवन में चला जाता है। इसी तरह देवतागण इस योगिक अग्नि का प्रयोग तब करते हैं जब वे वैकुण्ठ-लोक को जाते हैं। लेकिन भगवान् तो योगियों तथा देवताओं जैसे बद्धजीवों से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि भगवान् का नित्य आध्यात्मिक शरीर सारे जगत का स्रोत है जैसाकि *लोकाभिरामां स्वतनुम्* शब्दों से सूचित होता है। भगवान् कृष्ण का शरीर सारे ब्रह्माण्ड के लिए आनन्द का स्रोत है। *धारणाध्यानमंगलम्* शब्द यह बताता है कि जो लोग ध्यान तथा योग से आध्यात्मिक उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे भगवान् के शरीर के ध्यान के माध्यम से सर्वमंगल प्राप्त करते हैं। चूँकि योगीजन मात्र कृष्ण के शरीर का चिन्तन करने से मुक्त हो जाते हैं, वह शरीर निश्चय ही भौतिक नहीं होता, इसलिए संसारी योग-अग्नि द्वारा या अन्य किसी प्रकार की अग्नि द्वारा भस्म नहीं किया जा सकता।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर हमें *श्रीमद्भागवत* में श्रीकृष्ण के ही कथन (११.१४.३७) का स्मरण कराते हैं—*वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम्*—अग्नि के भीतर मेरे स्वरूप का ध्यान करना चाहिए जो समस्त ध्यान का शुभ लक्ष्य है। चूँकि भगवान् का दिव्य रूप अग्नि के भीतर स्थिति-तत्त्व के रूप में उपस्थित रहता है, तो भला अग्नि उस रूप को कैसे प्रभावित कर सकती है? इस प्रकार यद्यपि भगवान् योग-समाधि में प्रविष्ट करते प्रतीत हो रहे थे, किन्तु *अदग्ध्वा* शब्द सूचित करता है कि भगवान् का शरीर विशुद्धरूप से आध्यात्मिक होने के कारण जलने की औपचारिकता से बचता हुआ सीधे वैकुण्ठ धाम में प्रविष्ट हुआ। श्रील जीव गोस्वामी ने भी इस श्लोक की टीका करते हुए इस बात की विशद व्याख्या की है।

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ।
सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७॥

शब्दार्थ

दिवि—स्वर्ग में; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; पेतुः—गिरे; सुमनसः—फूल; च—तथा; खात्—आकाश से; सत्यम्—सत्य; धर्मः—धर्म; धृतिः—आज्ञाकारिता; भूमेः—पृथ्वी से; कीर्तिः—यश; श्रीः—सौन्दर्य; च—तथा; अनु—उनके साथ साथ; तम्—उनके पास; ययुः—गये।

ज्योंही भगवान् श्रीकृष्ण ने इस पृथ्वी को छोड़ा, त्योंही सत्य, धर्म, धृति, कीर्ति तथा सौन्दर्य उनके पीछे हो लिये। स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और आकाश से फूलों की वृष्टि होने लगी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार सारे देवता हर्षित थे क्योंकि हर एक यही सोच रहा था

कि कृष्ण उसके लोक में आ रहे हैं।

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

देव-आदयः—देवता इत्यादि; ब्रह्म-मुख्याः—ब्रह्मा इत्यादि; न—नहीं; विशन्तम्—प्रवेश करते हुए; स्व-धामनि—अपने धाम में; अविज्ञात—अज्ञात; गतिम्—उनकी गतिविधियाँ; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; ददृशुः—देखा; च—तथा; अति-विस्मिताः—अत्यन्त चकित।

ब्रह्मा इत्यादि देवता तथा उच्चतर प्राणी भगवान् कृष्ण को उनके धाम में प्रवेश करते हुए नहीं देख सके क्योंकि भगवान् ने अपनी गतिविधियों को प्रकट नहीं होने दिया। किन्तु कुछेक ने उनको देख लिया और वे अत्यधिक चकित थे।

सौदामन्या यथाक्लाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सौदामन्याः—बिजली का; यथा—जिस तरह; आकाशे—आकाश में; यान्त्याः—यात्रा कर रही; हित्वा—त्याग कर; अभ्र-मण्डलम्—बादल; गतिः—चाल; न लक्ष्यते—निश्चित नहीं की जा सकती; मर्त्यैः—मर्त्यों द्वारा; तथा—इसी तरह; कृष्णस्य—कृष्ण का; दैवतैः—देवताओं द्वारा।

जिस तरह सामान्य लोग बादलों को त्यागती बिजली के मार्ग को निश्चित नहीं कर सकते, उसी तरह देवतागण अपने धाम लौटते हुए भगवान् कृष्ण की गतिविधियों का पता नहीं लगा पाये।

तात्पर्य : बिजली की अचानक गतियाँ देवता तो देख सकते हैं किन्तु मनुष्य नहीं। इसी तरह भगवान् कृष्ण के आकस्मिक प्रयाण को वैकुण्ठवासी कृष्ण के संगी तो समझ पाये, किन्तु देवता नहीं।

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ।
विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-रुद्र-आदयः—ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य; ते—वे; तु—लेकिन; दृष्ट्वा—देख कर; योग-गतिम्—योगशक्ति; हरेः—भगवान् कृष्ण की; विस्मिताः—चकित; ताम्—उस शक्ति को; प्रशंसन्तः—यशोगान करते हुए; स्वम् स्वम्—अपने अपने; लोकम्—जगत को; ययुः—चले गये; तदा—तब।

किन्तु कुछ देवतागण—विशेष रूप से ब्रह्मा तथा शिवजी—यह निश्चित कर सके कि किस तरह भगवान् की योगशक्ति कार्य कर रही है और इस तरह वे चकित थे। सारे देवताओं ने

भगवान् की योगशक्ति की प्रशंसा की और तब वे अपने अपने लोक को लौट गये।

तात्पर्य : यद्यपि इस ब्रह्माण्ड में एक तरह से सारे देवता सर्वज्ञ हैं किन्तु वे भगवान् की योगशक्ति की गतिविधियों को समझ नहीं पाये। इसीलिए वे चकित थे।

राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते
संहृत्य चात्ममहिनोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा परीक्षित; परस्य—ब्रह्म का; तनु-भृत्—देहधारी जीवों के सदृश; जनन—जन्म; अप्यय—तथा अन्तर्धान; ईहाः—कर्म; माया—उनकी मायाशक्ति का; विडम्बनम्—झूठा प्रदर्शन; अवेहि—समझो; यथा—जसि तरह; नटस्य—अभिनेता का; सृष्ट्वा—उत्पन्न करके; आत्मना—अपने द्वारा; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; अनुविश्य—प्रवेश करके; विहृत्य—अभिनय करते हुए; च—तथा; अन्ते—अन्त में; संहृत्य—समाप्त करते हुए; च—तथा; आत्म-महिना—अपने यश से; उपरतः—समाप्त करके; सः—वह; आस्ते—रहते आते हैं।

हे राजा, तुम जान लो कि भगवान् का प्राकट्य तथा उनका अन्तर्धान होना, जो देहधारी बद्धजीवों के ही सदृश होते हैं, वास्तव में उनकी मायाशक्ति द्वारा अभिनीत खेल हैं जैसा कि कोई अभिनेता करता है। वे इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके उसमें प्रवेश करते हैं, कुछ काल तकउसके भीतर खिलवाड़ करते हैं और अन्त में समेट लेते हैं। तब भगवान् विराट जगत के सारे कार्यों को बन्द करके, अपनी दिव्य *महिमा* में स्थित रहते जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार यदुवंश के सदस्यों में हुई तथाकथित लड़ाई भगवान् की लीला-शक्ति का प्रदर्शन थी क्योंकि कृष्ण के निजी संगी कभी भी बद्धजीवों की तरह सामान्य जन्म तथा मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ते। ऐसा होने से, स्वयं भगवान् जन्म-मृत्यु से परे हैं जैसाकि इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है।

यहाँ पर *नटस्य* शब्द महत्त्वपूर्ण है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर किसी जादूगर की निम्नलिखित कहानी बतलाते हैं, जो मरने की कलाबाजी दिखलाता है।

एक जादूगर किसी राजा के द्वारा रखाये गये बहुमूल्य वस्त्रों, रत्नों, सिक्कों इत्यादि के ढेर के पास राजा के सामने जाता है। रत्नजटित हार अपने हाथ में लेते हुए जादूगर राजा से कहता है, ''अब मैं इस हार को ले रहा हूँ और अब आप इसे नहीं ले सकते'' और वह उस हार को गायब कर देता है। ''अब

मैं यह सोने का सिक्का उठा रहा हूँ; आप इसे नहीं ले सकते'' यह कह कर वह सोने के सिक्के को गायब कर देता है। इसी तरह राजा को चेतावनी देते हुए वह राजा के सात हजार घोड़ों को गायब कर देता है। इसके बाद वह जादूगर ऐसा मोहजाल फैलाता है कि राजा के लड़के, नाती-पोते, भाई तथा अन्य परिवार वाले एक-दूसरे पर हमला करते हैं और इस उग्र लड़ाई में प्राय: सभी मृत हो जाते हैं। राजा उस जादूगर को बोलते देखता है और उस विशाल सभाभवन में बैठे वह अपने सामने इन घटनाओं को घटित होते देखता है।

''तत्पश्चात् वह जादूगर कहता है : हे राजन्! मैं अब ज्यादा जीवित नहीं रहना चाहता। जिस तरह मैंने जादू सीखा है, उसी तरह अपने गुरु के चरणकमलों की कृपा से मैंने योग का ध्यान भी सीखा है। मनुष्य को किसी तीर्थस्थान में ध्यान करते हुए अपना शरीर छोड़ देना चाहिए और चूँकि आपने तमाम पुण्यकर्म किये हैं, इसलिए आप स्वयं तीर्थस्थान हैं। इसलिए अब मैं अपना शरीर छोड़ दूँगा।''

''इस तरह कह कर, वह जादूगर उचित योग-आसन में बैठ जाता है और अपने को प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि में स्थिर करके मौन हो जाता है। एक क्षण बाद उसकी समाधि से उत्पन्न अग्नि उसके शरीर से निकल कर जलती है और उसे भस्म कर देती है। तब उसकी सारी पत्नियाँ, शोकाकुल होकर अग्नि में प्रवेश करती हैं।''

''तीन या चार दिन बाद, अपने प्रान्त में लौट जाने के बाद, वह जादूगर अपनी एक पुत्री को राजा के पास भेजता है। पुत्री ने उससे कहा, ''हे राजा! मैं अभी अभी आपके महल में अपने साथ बिना किसी के देखे, आपके स्वस्थ पुत्रों, पौत्रों, भाइयों इत्यादि को लेकर आई हूँ। साथ में आपके द्वारा प्रदत्त सभी रत्न तथा अन्य वस्तुएँ भी लाई हूँ। इसलिए आप मुझे इस जादूगरी के लिए जो आपके समक्ष प्रदर्शित किया गया है, समुचित पुरस्कार दें।'' इस तरह सामान्य जादू भी जन्म-मृत्यु की नकल कर सकता है।

इसलिए यह समझना कठिन नहीं है कि भगवान्, प्रकृति के नियमों से परे होते हुए भी, अपनी मायाशक्ति प्रदर्शित करते हैं जिससे मूर्ख लोग यह सोचें कि भगवान् ने अपना शरीर एक सामान्य व्यक्ति की तरह त्यागा है। वस्तुत: भगवान् कृष्ण अपने नित्य शरीर में ही अपने धाम लौट गये जिसकी पुष्टि समूचे वैदिक वाङ्मय में हुई है।

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं
त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ।
जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

मर्त्येन—उसी मनुष्य शरीर में; यः—जो; गुरु-सुतम्—अपने गुरु के पुत्र को; यम-लोक—यमराज के लोक को; नीतम्—लाया गया; त्वाम्—तुमको; च—तथा; आनयत्—वापस लाया; शरण-दः—शरण देने वाला; परम-अस्त्र—ब्रह्मास्त्र; दग्धम्—जलाया गया; जिग्ये—जीत लिया; अन्तक—मृत्यु के दूतों के; अन्तकम्—जो मृत्यु है; अपि—भी; ईशम्—शिवजी; असौ—वह, कृष्ण; अनीशः—असमर्थ; किम्—क्या; स्व—अपनी; अवने—रक्षा में; स्वः—वैकुण्ठ-लोक को; अनयत्—लाया; मृगयुम्—शिकारी; स-देहम्—सशरीर।

भगवान् कृष्ण अपने गुरु-पुत्र को सशरीर यमराज के लोक से वापस ले आये और जब तुम अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र द्वारा जला दिये गये थे, तो उन्होंने परम रक्षक के रूप में तुम्हें भी बचाया। उन्होंने मृत्यु के दूतों को भी मृत्यु देने वाले शिवजी को युद्ध में परास्त किया और जरा शिकारी को उसके मानव शरीर में वैकुण्ठ भेज दिया। क्या कभी ऐसा पुरुष अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो सकता है?

तात्पर्य : इस जगत से कृष्ण के प्रयाण की कथा कहते समय, अपना तथा महाराज परीक्षित का दुख कम करने के लिए श्री शुकदेव गोस्वामी कई स्पष्ट उदाहरण देकर यह सिद्ध करते हैं कि भगवान् कृष्ण मृत्यु के प्रभाव से बहुत दूर हैं। यद्यपि उनके गुरु (सान्दीपनि मुनि) का पुत्र मृत्यु द्वारा ले जाया गया था, किन्तु भगवान् उसे सशरीर वापस ले आये थे। इसी तरह भगवान् कृष्ण को ब्रह्मशक्ति छू नहीं सकती क्योंकि उन्होंने परीक्षित महाराज को आसानी से बचा लिया था यद्यपि वे ब्रह्मास्त्र द्वारा दग्ध किये जा चुके थे। शिवजी बाणासुर के साथ युद्ध करते कृष्ण द्वारा स्पष्ट रूप से पराजित हो चुके थे और जरा शिकारी सदेह वैकुण्ठ-लोक भेज दिया गया था। मृत्यु तो भगवान् कृष्ण की बहिरंगा शक्ति का तुच्छ विस्तार है और वह भगवान् पर कोई असर नहीं कर सकती। जो लोग कृष्ण के कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति को समझते हैं, उन्हें इन उदाहरणों से विश्वसनीय प्रमाण प्राप्त हो जायेगा।

तथाप्यशेषस्थितिसम्भवाप्यये-
ष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ।
नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं

मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; अशेष—समस्त सृजित वस्तुओं के; स्थिति—पालन-पोषण में; सम्भव—सृष्टि; अप्ययेषु—तथा संहार में; अनन्य-हेतुः—एकमात्र कारण; यत्—क्योंकि; अशेष—असीम; शक्ति—शक्ति; धृक्—से युक्त; न ऐच्छत्—इच्छा नहीं की; प्रणेतुम्—रखने के लिए; वपुः—अपना दिव्य शरीर; अत्र—यहाँ; शेषितम्—शेष; मर्त्येन—इस भौतिक जगत से; किम्—क्या लाभ; स्व-स्थ—उनमें स्थित रहने वालों के; गतिम्—गन्तव्य को; प्रदर्शयन्—दिखलाते हुए।

असीम शक्तियों के स्वामी भगवान् कृष्ण असंख्य जीवों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के एकमात्र कारण होते हुए भी, इस जगत में अपने शरीर को अब और अधिक नहीं रखना चाहते थे। इस तरह उन्होंने आत्मस्थ लोगों को गन्तव्य दिखलाया और यह प्रदर्शित किया कि इस मर्त्य जगत का कोई अपना मूल्य नहीं है।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण पतितात्माओं को बचाने के लिए इस जगत में अवतरित हुए थे, किन्तु वे लोगों को प्रोत्साहित नहीं करना चाहते थे कि भविष्य में वे व्यर्थ ही इधर-उधर घूमें। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके कृष्णभावनामृत को पूर्ण करके भगवद्धाम वापस जाय। यदि भगवान् कृष्ण और अधिक काल तक पृथ्वी पर रहते, तो वे व्यर्थ ही भौतिक जगत की प्रतिष्ठा को बढ़ाते होते।

जैसाकि श्री उद्धव ने *श्रीमद्भागवत* (३.२.११) में कहा है—*आदायान्तरधाद् यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम्*—पृथ्वी पर सभी लोगों की दृष्टि के समक्ष अपना शाश्वत रूप प्रकट करने वाले भगवान् कृष्ण ने उन लोगों की दृष्टि से अपने को अन्तर्धान कर लिया जो वांछित तपस्या न करने से उन्हें देख पाने में असमर्थ थे। उद्धव में *भागवत* (३.२.१०) में यह भी कहा है—

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः।

भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ॥

"भगवान् की माया से विमोहित पुरुषों के शब्द किसी भी स्थिति में पूर्णतया शरणागतों की बुद्धि को विचलित नहीं कर सकते।" जो व्यक्ति कृष्ण के दिव्य तिरोधान को समझने के लिए वैष्णव आचार्यों का आश्रय लेता है, वह आसानी से समझ जाता है कि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं और उनका आध्यात्मिक शरीर उनकी आध्यात्मिक शक्ति से अभिन्न है।

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ।

प्रयतः कीर्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एताम्—इसे; प्रातः—प्रातःकाल; उत्थाय—उठ कर; कृष्णस्य—कृष्ण के; पदवीम्—गन्तव्य को; पराम्—परम; प्रयतः—ध्यानपूर्वक; कीर्तयेत्—यशोगान करता है; भक्त्या—भक्ति से; ताम्—उस गन्तव्य को; एव—निस्सन्देह; आप्नोति—प्राप्त करता है; अनुत्तमम्—अद्वितीय।

जो व्यक्ति प्रातःकाल नियमित रूप से जगता है और भगवान् कृष्ण के दिव्य तिरोधान तथा उनके निजी धाम लौटने की महिमा का भक्तिपूर्वक कीर्तन करता है, वह निश्चय ही उसी परम पद को प्राप्त करेगा।

दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ।
पतित्वा चरणावस्त्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥ १५॥

शब्दार्थ

दारुकः—दारुक; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—आकर; वसुदेव-उग्रसेनयोः—वसुदेव तथा उग्रसेन के; पतित्वा—गिर कर; चरणौ—पैरों पर; अस्त्रैः—आँसुओं से; न्यषिञ्चत्—भिगो दिया; कृष्ण-विच्युतः—कृष्ण से बिछुड़े।

द्वारका पहुँचते ही दारुक वसुदेव तथा उग्रसेन के चरणों पर गिर पड़ा और भगवान् कृष्ण की क्षति पर शोक करते हुए अपने आँसुओं से उनके चरणों को भिगो दिया।

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ।
तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविर्मूर्च्छिताः ॥ १६॥
तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ।
व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

कथयाम् आस—उसे कह सुनाया; निधनम्—विनाश; वृष्णीनाम्—वृष्णियों का; कृत्स्नशः—पूर्ण; नृप—हे राजा परीक्षित; तत्—वह; श्रुत्वा—सुन कर; उद्विग्न—क्षुब्ध; हृदयाः—हृदयों से; जनाः—लोग; शोक—शोक से; विर्मूर्च्छिताः—संज्ञाहीन हुए; तत्र—वहाँ; स्म—निस्सन्देह; त्वरिताः—तेजी से; जग्मुः—गये; कृष्ण-विश्लेष—कृष्ण के विछोह से; विह्वलाः—अभिभूत; व्यसवः—प्राणहीन; शेरते—पड़े हुए थे; यत्र—जहाँ; ज्ञातयः—उनके सम्बन्धी; घ्नन्तः—प्रहार करते हुए; आननम्—अपने ही मुखों पर।

दारुक ने वृष्णियों के पूर्ण विनाश का वृत्तान्त कह सुनाया और हे परीक्षित, यह सुन कर लोग अपने हृदयों में अतीव किंकर्तव्यविमूढ़ और शोक से स्तम्भित हो गये। वे कृष्ण के विछोह से विह्वल अपना सिर पीटते उस स्थान के लिए जल्दी जाने लगे जहाँ उनके सम्बन्धी मृत पड़े थे।

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ।
कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

देवकी—देवकी; रोहिणी—रोहिणी; च—भी; एव—निस्सन्देह; वसुदेवः—वसुदेव; तथा—भी; सुतौ—दोनों पुत्रों; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा राम को; अपश्यन्तः—न देखते हुए; शोक-आर्ताः—शोक से पीड़ित; विजहुः—खोदी; स्मृतिम्—अपनी अपनी चेतना।

जब देवकी, रोहिणी तथा वसुदेव ने अपने कृष्ण तथा बलराम पुत्रों को नहीं पाया, तो वे शोक से अचेत हो गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार असली देवकी, रुक्मिणी तथा अन्य महिलाएँ द्वारका में भौतिक जगत की आँखों से अदृश्य रहती रहीं जबकि देवता जो देवकी, रोहिणी तथा अन्यों के आंशिक पक्षों को प्रस्तुत करने वाले थे, अपने मृत सम्बन्धियों को देखने प्रभास गये।

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ।
उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

प्राणान्—अपने प्राण; च—तथा; विजहुः—त्याग दिये; तत्र—वहाँ; भगवत्—भगवान् के; विरह—वियोग के कारण; आतुराः—सताये हुए; उपगुह्य—आलिंगन करके; पतीन्—अपने पतियों को; तात—हे परीक्षित; चिताम्—चिता में; आरुरुहुः—चढ़ गईं; स्त्रियः—पत्नियाँ।

भगवान् के वियोग से आतुर उनके माता-पिता ने उसी स्थान पर अपने प्राण त्याग दिये। हे परीक्षित, तब यादवों की पत्नियाँ अपने अपने मृत पतियों का आलिंगन करके चिताओं पर चढ़ गईं।

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ।
कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

राम-पत्न्यः—बलराम की पत्नियाँ; च—तथा; तत्-देहम्—उनके शरीर को; उपगुह्य—चूम कर; अग्निम्—अग्नि में; आविशन्—प्रविष्ट हुईं; वसुदेव-पत्न्यः—वसुदेव की पत्नियाँ; तत्-गात्रम्—उसके शरीर को; प्रद्युम्न-आदीन्—प्रद्युम्न इत्यादि; हरेः—भगवान् हरि के; स्नुषाः—पतोहुएँ; कृष्ण-पत्न्यः—कृष्ण की पत्नियाँ; अविशन्—प्रविष्ट हुईं; अग्निम्—अग्नि में; रुक्मिणी-आद्याः—महारानी रुक्मिनी इत्यादि; तत्-आत्मिकाः—जिनकी चेतना उनमें पूर्णतया लीन थी।

बलरामजी की पत्नियाँ भी अग्नि में प्रविष्ट हुईं और उनके शरीर का आलिंगन किया। इसी तरह वसुदेव की पत्नियाँ उनकी चिता में प्रविष्ट हुईं और उनके शरीर को चूमा। हरि की पतोहुएँ प्रद्युम्नादि अपने अपने पतियों की चिताओं में प्रविष्ट हुईं। रुक्मिणी तथा भगवान् कृष्ण की अन्य पत्नियाँ, जिनके हृदय उन्हीं में पूर्णतया लीन थे, उनकी चिता में प्रविष्ट हुईं।

तात्पर्य : यह समझा जाता है कि यहाँ पर वर्णित शोकमय दृश्य भगवान् की मायाशक्ति का प्रदर्शन है और पृथ्वी पर भगवान् कृष्ण की लीलाओं को अन्तिम नाटकीय रूप प्रदान करता है। वस्तुत: भगवान् कृष्ण अपने आदि शरीर के साथ अपने नित्य धाम में लौट गये और उन्हीं के साथ उनके नित्य पार्षद भी लौट गये। भगवान् की लीलाओं का यह अन्तिम हृदयविदारक दृश्य भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का खेल है, जिससे भगवान् की व्यक्त लीलाओं का पूर्ण नाटकीय अन्त हो जाता है।

अर्जुन: प्रेयस: सख्यु: कृष्णस्य विरहातुर: ।
आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतै: सदुक्तिभि: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अर्जुन:—अर्जुन ने; प्रेयस:—अपने प्रिय; सख्यु:—मित्र का; कृष्णस्य—कृष्ण के; विरह—विछोह से; आतुर:—दुखी; आत्मानम्—अपने को; सान्त्वयाम् आस—सान्त्वना दी; कृष्ण-गीतै:—कृष्ण द्वारा गाये गये गीतों (भगवद्गीता) से; सत्-उक्तिभि:—दिव्य शब्दों से।

अर्जुन अपने सर्वप्रिय मित्र भगवान् कृष्ण के विछोह से अत्यधिक दुखी हुए। किन्तु उन्होंने भगवान् के उन दिव्य शब्दों का स्मरण करके, जिन्हें उन्होंने उनसे गीत रूप में गाया था, अपने को सान्त्वना दी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अर्जुन ने *गीता* के निम्नलिखित श्लोकों का स्मरण किया—

नाहं प्रकाश: सर्वस्य योगमाया समावृत: ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

(*भगवद्गीता* ७.२५)

''मैं मूर्खों तथा अल्पज्ञों के लिए कभी भी प्रकट नहीं हूँ। उनके लिए तो मैं अपनी शाश्वत सृजनात्मक शक्ति (योगमाया) द्वारा आच्छादित रहता हूँ; अत: मोहित हुआ जगत मुझ अजन्मे तथा अविनाशी को नहीं जान पाता है।''

इसी तरह श्रील जीव गोस्वामी ने *भगवद्गीता* के इस श्लोक (१८.६५) का उल्लेख किया है—*मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे*—तुम मेरे पास निश्चित रूप से आओगे। मैं तुम्हें वचन देता हूँ क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र हो। उन्होंने *महाभारत* के *स्वर्ग पर्व* से भी निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्रह्मणे वपुषान्वितम्।

तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनोपसूचिताम्॥

दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्कृतम्।

चक्रप्रभृतिभिर्घोरै दिव्यै पुरुषविग्रहै॥

उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा।

यथास्वरूपं कौन्तेय तथैव मधुसूदनम्॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य युधिष्ठिरम्।

यथार्हं प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ॥

''वहाँ पर युधिष्ठिर ने गोविन्द को अपने आदि साकार परब्रह्म के रूप में देखा। वे उसी तरह प्रतीत हो रहे थे जैसाकि युधिष्ठिर ने उन्हें पहले देखा था। वे उन्हीं लक्षणों से युक्त थे। वे अपने शरीर से निकल रहे तेज से देदीप्यमान थे और वे अपने दिव्य हथियारों—चक्र आदि से घिरे थे, जो अपने डरावने साकार रूपों में प्रकट हुए थे। हे कुन्ती के वंशज! मधुसूदन की पूजा तेजस्वी वीर अर्जुन द्वारा की जा रही थी और वे भी अपने आदि रूप में प्रकट हुए थे। जब इन दो पुरुष-सिंहों ने, जो देवताओं के आराध्य हैं, युधिष्ठिर को उपस्थित देखा, तो वे उचित आदर के साथ उनके पास गये और उनकी पूजा की।''

बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः साम्परायिकम् ।
हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२॥

शब्दार्थ

बन्धूनाम्—सम्बन्धियों के; नष्ट-गोत्राणाम्—जिनके परिवार में कोई निकट परिवार वाला नहीं बचा था; अर्जुनः—अर्जुन ने; साम्परायिकम्—दाह-कर्म; हतानाम्—मारे हुओं का; कारयाम् आस—सम्पन्न किया; यथा-वत्—वेद वर्णित विधि से; अनुपूर्वशः—मृतकों की आयु के क्रम से।

तत्पश्चात् अर्जुन ने इस बात का ध्यान रखा कि उन मृतकों का उचित रीति से दाह-कर्म किया जाये जिनके परिवार में कोई पुरुष सदस्य नहीं बचा था। उन्होंने एक-एक करके सारे यदुओं के वांछित कृत्य पूरे किये।

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ।

वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

द्वारकाम्—द्वारका; हरिणा—भगवान् हरि द्वारा; त्यक्ताम्—त्यागी हुई; समुद्रः—समुद्र ने; अप्लावयत्—जलमग्न कर लिया; क्षणात्—तुरन्त; वर्जयित्वा—के अतिरिक्त; महा-राज—हे राजा; श्रीमत्-भगवत्—भगवान् का; आलयम्—आवास।

जैसे ही भगवान् ने द्वारका का परित्याग किया, त्योंही, हे राजा, समुद्र ने उसे चारों ओर से घेर लिया और एकमात्र उनका महल ही अछूता रहा।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् के धाम का बाह्य स्वरूप तो समुद्र द्वारा ढक लिया गया किन्तु भगवान् की नित्य द्वारका भौतिक ब्रह्माण्ड से परे विद्यमान है और निश्चय ही, भौतिक समुद्र से परे है। द्वारका का निर्माण देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने किया था और सुधर्मा सभाभवन स्वर्ग से लाया गया था। उस नगरी में कुलीन यदुवंश के अनेक सुन्दर तथा शानदार महल थे जिनमें सबसे सुन्दर भगवान् का आवास था। श्रील जीव गोस्वामी उल्लेख करते हैं कि वर्तमान युग में भी जो लोग मूल द्वारका स्थल के निकट रहते हैं, वे कभी कभी समुद्र में उसकी झलक पा जाते हैं। अन्ततोगत्वा भगवान् के संगी तथा धाम शाश्वत हैं और जो इसे समझता है, वह पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होने के योग्य है।

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ।
स्मृत्याशेषाशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—नित्य ही; सन्निहितः—उपस्थित; तत्र—वहाँ; भगवान्—भगवान्; मधुसूदनः—मधुसूदन; स्मृत्या—स्मरण करने से; अशेष-अशुभ—प्रत्येक अशुभ वस्तु का; हरम्—हरण करने वाला; सर्व-मङ्गल—समस्त शुभ वस्तुओं का; मङ्गलम्—अत्यन्त शुभ, मंगलकारी।

भगवान् मधुसूदन शाश्वत रीति से द्वारका में उपस्थित रहते हैं। यह समस्त शुभ स्थानों में सर्वाधिक शुभ है और इसके स्मरण मात्र से सारे कल्मष नष्ट हो जाते हैं।

स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान्धनञ्जयः ।
इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स्त्री—स्त्रियाँ; बाल—बच्चे; वृद्धान्—तथा बूढ़ों; आदाय—लेकर; हत—मारे हुओं के; शेषान्—बचे हुओं को; धनञ्जयः—अर्जुन ने; इन्द्रप्रस्थम्—पाण्डवों की राजधानी में; समावेश्य—फिर से बसाकर; वज्रम्—अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को; तत्र—वहाँ; अभ्यषेचयत्—सिंहासन पर बिठाया।

अर्जुन यदुवंश की बची हुई स्त्रियों, बच्चों तथा बूढ़ों को इन्द्रप्रस्थ ले आये जहाँ उन्होंने

अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को यदुओं के शासक के रूप में प्रतिष्ठापित किया।

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ।
त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुन कर; सुहृत्—मित्रों की; वधम्—मृत्यु; राजन्—हे राजा; अर्जुनात्—अर्जुन से; ते—तुम्हारे; पितामहाः—बाबा लोग (युधिष्ठिर तथा उनके भाई); त्वाम्—तुमको; तु—तथा; वंश-धरम्—वंश कोबनाये रखने वाला; कृत्वा—बनाकर; जग्मुः—चले गये; सर्वे—वे सभी; महा-पथम्—महान् यात्रा के लिए।

हे राजा, अर्जुन से अपने मित्र की मृत्यु सुन कर आपके बाबा लोगों ने आपको वंश के धारक के रूप में स्थापित कर दिया और इस जगत से अपने प्रयाण की तैयारी के लिए चल पड़े।

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एतत्—इन; देव-देवस्य—देवों के देव का; विष्णोः—विष्णु के; कर्माणि—कार्यकलापों; जन्म—जन्म; च—तथा; कीर्तयेत्—कीर्तन करता है; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; मर्त्यः—मानव प्राणी; सर्व-पापैः—सारे पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है।

जो व्यक्ति देवताओं के देवता विष्णु की इन विविध लीलाओं तथा अवतारों की महिमाओं का श्रद्धापूर्वक कीर्तन करता है, वह सारे पापों से मोक्ष प्राप्त करता है।

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; हरेः—भगवान् हरि के; भगवतः—भगवान् के; रुचिर—आकर्षक; अवतार—अवतारों के; वीर्याणि—पराक्रमों; बाल—बचपन; चरितानि—लीलाएँ; च—तथा; शम्-तमानि—अत्यन्त शुभ; अन्यत्र—और कहीं; च—तथा; इह—यहाँ; च—भी; श्रुतानि—सुना हुआ; गृणन्—स्पष्ट कीर्तन करते; मनुष्यः—मनुष्य; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—दिव्य; परमहंस—सिद्ध मुनियों के; गतौ—गन्तव्य (श्रीकृष्ण) के लिए; लभेत—प्राप्त करेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण के सर्व-आकर्षक अवतारों के सर्वमंगल पराक्रम तथा उनके द्वारा बाल्यकाल में की गई लीलाएँ इस श्रीमद्भागवत तथा अन्य शास्त्रों में वर्णित हैं। जो कोई उनकी लीलाओं के इन वर्णनों का स्पष्ट कीर्तन करता है, उसे उन भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति प्राप्त

होगी जो समस्त सिद्ध मुनियों के गन्तव्य हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के ''भगवान् श्रीकृष्ण का अन्तर्धान'' नामक इकतीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।

यह ग्यारहवाँ स्कन्ध २६ मार्च १९८२ को ब्राजील में साओ पॉलो राज्य में न्यू गोकुल साउथ अमेरिकन तीर्थस्थल पर पूरा हुआ।